अविश्वास की शेष गंध : ‘मलबे का मालिक’

दू. राम उदय कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
एस. डी. एस. कॉलेज, कलर, अरबल, बिहार, भारत।

सारांश – आदमी अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की भावना की क़द्र नहीं करता। आस -पास के लोगों के आड़े वक़्त वह अपनी कायरता कारण काम नहीं आ पाता। अपने घोड़ों में घुस सुश्रुषा खोजे जा रहा है और दूसरों की चीज़ों पर नज़र भी गड़ी है। स्वार्थ के इस निचाट अंधेरे में पशु की गुराथिट का प्रतिवाद सचमुच बड़ा मानीखेज है।

मुख्य शब्द – मोहन राकेश, अविश्वास , शेष गंध, मलबे का मालिक

मोहन राकेश की यह कहानी विभाजन के दौर की पीड़ा की साक्षी है। इस कहानी में आपसी अविश्वास की शेष गंध तो है , लोगों के स्वार्थ से जुड़ी बेमुखत आर्थिक गड़बाढ़ भी मौजूद है। कहानी शुरू होती है इस सूचना से कि ‘साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आए थे।’ वे यहीं से विभाजन की मार्गकाट में सब छोड़, बस गई बच्चा के भाग गए थे। पर साढ़े सात साल ही क्यों ? सात या आठ साल क्यों नहीं ? शायद 1947 का वह दौर भारत के लिए साहसिक या शानियार है। क्या तो यह दौर बीत गया? जो आये हैं हांकी मैच देखने के बहाने, वे अपनी अमृतसर की यात्रा देखकर लाहौर तक स्वार्थ ही सीमा निर्धारित कर रहे थे। नहीं! वे अपनी यात्रा देखकर लाहौर तक स्वार्थ नहीं ही सीमा निर्धारित कर रहे थे। उन्होंने अपनी यात्रा तत्काल भूल भूल भी छोड़ दी थी। जो आये हैं साढ़ेसाती या शानियार है। क्या तो यह दौर बीत गया? जो आये हैं हांकी मैच देखने के बहाने, वे अपनी अमृतसर की यात्रा देखकर लाहौर तक स्वार्थ ही सीमा निर्धारित कर रहे थे। नहीं! वे अपनी यात्रा देखकर लाहौर तक स्वार्थ नहीं ही सीमा निर्धारित कर रहे थे।
साक्षी मिश्रा, प्रो. संजय श्रीवास्तव Sh Int S Ref Res J, November-December-2020, 3(6) : 91-96

हर्षिर लोगो का सगा- संबंधी है, जिसके हाल जाने के लिए वे लोग उत्सुक हैं। लाहोर से आये लोग उस दिन शहर के मेहमान थे, जिन्से मिलकर और बातें करके लोगों को बहुत खुशी हो रही थी।" कहानी का ये प्रारंभ ‘उसने कहा था’ के प्रारंभ की याद दिला देता है। बाजार के वर्णन और आते-जाते लोगो की जिंदाबादिता यहाँ भी है। पर एक अर्थ है वहाँ, लहाना और बच्ची के सतल सहज मनोभाव की इकट्ठा उस जिंदाबादि परिवेश को एक धुला-धुला सा अहसास देती है, जैसे सुबह की ताजगी - वह यहाँ नहीं है। यहाँ विभाजन की जासौरी की कालिमा उस जिंदाबादिता पर जैसे अंधेरे की एक चादर तान देती है। कहानी आगे बढ़ती है और यह अंधेरा उभरने लगता है। बाजार बाढ़ों के उजड़े हुए बाजार से जहाँ ज्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। विभाजन के दंगे में इस शहर के जल जाने का खतरा पैदा हो गया था। किसी तरह वह आप काबू में आ गयी थी , पर उसने मुसलमानों के एक- एक घर के साथ हिंदुओं के भी चाचा-चाचा, छह -छह घर जल के रख हो गए थे। जगह-जगह मलबे के ठेर अभी मौजूद थे।

आप किसी को भी नहीं बख्शाई चाहें वो हिंदू हो या कि मुसलमान या किसी अन्य धर्म का, उसका धर्म तो जलाना ही होता है। सांप्रदायिकता की आग में दोनों तरफ के यानि हिंदुस्तान और पाकिस्तान के हिंदू - मुसलमानों पर समान रूप से अपने धर्म का निर्भार किया था। हिंदुस्तान से बेघर परिवार और संपत्ति से महरूम मुसलमान भगा दिए गए थे और पाकिस्तान से हिंदू और सिंधु।

अमृतसर के इस बाजार बाढ़ों में एक दर्जन गनी मियां आया है जो लोगों के कपड़े सिलता था, वह दंगे से पूर्व पाकिस्तान चला गया था। उसका बेटा चिएदीन अपने छ: महीने पुरूरे घर को छोड़कर न जा सका। उसने कितने ग्रें और ललक से उसने घर बनवाया होगा ! बाल बच्चों के साथ वहाँ जमा रहा। घर से इस ग्रें ने एक और तरफ पैदा किया, जो उसे यहाँ रहकर नहीं रख पाया। उसने अपने मोहल्ले बालों पर भरोसा किया। खासकर रखें फहलवान पर। गनी मियां जब रखें को देखता है तो अपने जले, जमींदार घर और पूरे परिवार के मर जाने के दु:ख में जैसे उसे एक तिनके का सहारा मिल जाता है - “बोले कबूतरी ने यह नहीं सोचा कि गली में खतरा न हो पर बाहर से तो खतरा आ सकता है। रखें उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रखें के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आई तो रखें के रोके भी नहीं रकी।"
हम ठोंडा पीछे चलें जब गनी मियाँ कहानी में प्रवेश करते हैं। नए आबाद हुए घरों और बीच - बीच में जले घरों के मलबों ने गनी मियाँ को पेशाव्र किया। उनकी बूढ़ी आँखें ने जैसे अपनी ही गली को पहचानने से इन्कार कर दिया। कुछ औरतों के झगड़े ने उस पहचान को जैसे ताजा करना शुरु किया - ‘सब कुछ बदल गया मगर बोलियाँ नहीं बदलीं’।

बिसरो हुई यह पहचान जब उभरने लगी तो स्वतः: उसमें अपनान पता। रोते हुए आते एक बच्चे को उसने बुलाया - “इधर आ, बेटे, आ इधर। देख, तुझे चिंतजी देंगे।” यह इसका चिंतामन यह हुआ कि मोहल्ले में हल्ला पड़ गया। बच्चों को घर में बुलाया जाने का लगा कि कहीं पाकिस्तान से आया मसल्ला बच्चों को चुरा न ले। अपनाया, जो उभर रहा था उसे एक झटका लगा। बच्चों को माँ ने अंदर खींच लिया और गनी मियाँ ने पैसा वापस जेब में रख लिया। सादेसाती का असर बढ़ा गहरा है।

उभरता हुआ यह अपनाया जो फिर दूर रहा था उसे मनोरी के रूप में एक सहाया मिला। बीच के साढ़े सात सालों में वह बच्चा अब नवयुवक बन चुका था चाबी का गुण्डा घुमाता वह मस्ती में गुजर रहा था। गनी मियाँ को यह पहचान नहीं पाया। तब गनी मियाँ ने उसे नाम लेकर पुकारा। उसे बताया कि वह चिरागदीन का बाप है जो उनके कपड़े सिलता था। मनोरी उसे उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा। मनोरी उसे उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा।

उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी। उसे मनोरी ने उसके घर के पास ले गया जो अर्ध मलबे का ढेर रहा, पूरे मोहल्ले में चेहरों की ताकत रही थी।
जाकी रही भावना जैसी। गनी मिराओं को रक्खे की इस बेजान हालत पर रहम आ गया। ठीक भी था। इन्हें सच का पता कहाँ था, उन्हें भाद्र अभिमन्यु के अपने में अपने गम के लिये सहारा पा रहे थे। रक्खे ने प्रभु की गुहार लगायी, तो उसने उन्हें एक दरमियां इंसान नजर आया। सहानुभूति पाकर (अभक्षक ही सही) गनी मिराओं गल गए और रक्खे को ही साँतना दे चले - “जो होता था, हो गया रक्खया! उसे अब कोई लीटा थोड़े ही सकता है! खुदा नें की नें की बनाये रखे और बद की बदी माफ़ करे ! मैंने आत्म तुम लोगों को देख लिया, सो समझूंगा कि चिराग को देख लिया। अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे।” प्रभु की गुहार के सापेक्ष अल्लाह से की गयी यह दुआ परायेपन की उस चढ़ान को भेद कर निकली है जहाँ निहित स्वार्थ आपराधिक कृत्यों को अंजाम देते हैं।

पर क्या होता अगर गनी मिराओं को सब कुछ पता चल जाता जैसा कि मोहल्ले बाले चाहते थे। वैसे वह नहीं हुआ और मोहल्ले बालों को उनकी जलन की खुराक न मिल सकी। कहानीकार ने विरोधी मनोभावों में जी रहे दो व्यक्तियों की मनोदशा को बड़े मार्मिक दंग से कम से कम में रक्खे दिया और काफी कुछ काव्यात्मक ऊँचाई, इस प्रसंग को दिया है- रक्खे में वह ओज, वह बौंस नहीं रही। एक कुट्ठा उन मल्लों के बीच बैठा था, पर उसे भी रक्खे ने बड़े अनमने दंग से भगावल और न भागने पर छोड़ दिया। लच्छे से रोज दिन की तरह ‘सड़े के गुर या सेहत के नुक्से’ पर बात नहीं कर पाया अपितु उसे पंद्रह साल पहले अपनी वैण्ण देवी की यात्रा का विस्तार मुनाता रहा। गनी मिराओं के सहज इसानी बताते ने उसके अन्दर के इंसान को भी सजग कर दिया और वह आपराधिक दंग में गरे डूंगता चला गया। गनी मिराओं की उपस्थिति और उसका सदृश रक्खे को अपाराधिक के बीच जैसे निजःशक्त बना देता है। कुट्ठे को अनमने दंग से भगाकर वह कुंए की सिल पर जाकर लेट गया जैसे अब उसमें भेद रहने की भी तार न रही।

गनी मिराओं चले गए। कई लोग गुजरे और सबने रक्खे से यही प्रश्न किया – “रक्खे शाह, सुना है, आज गनी पाकिस्तान से आया था।”

“हाँ, आया था”, रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

“फिर ?”

“फिर कुछ नहीं। चला गया।”
रखें को बोलने में भी जैसे परेशानी हो रही है। कहानी की अंतिम पंक्ति है - “काफी दे भीकर के बाद जब उसे गली में कोई प्रणाम चलता - फिरता नजर नहीं आया, तो वह एक बार कान झटकने मलबे पर लौट गया और वहाँ कोने में बैठकर गुरुने लगा।”

सारे लोग रखें से पूछकर चले गए। मुझे में कोई न हो तो उसे गली में कोई प्राणी चलता - सफरता नजर नहीं आया। अन्य लोग अपने घरो में कैद हो रहे हैं। यानि बात आई - गई हो गयी। पर कुत्ता कोने में बैठा गुरुत्व रहा, जैसे इसनी जज्बे के गहराते सनाटे और अंधकार के बीच प्रतिवाद का स्वर हो।

तो भारतीय इतिहास के उस सादा सादी दीर्घ के असली बजह आज भी भारतीय लोकतंत्र पर तारी है। आदमी अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की भावना की कठरीयत नहीं करता। आस - पास के लोगों के आंदोलन वह अपनी कार्यता कारण काम नहीं आ पाता। अपने घोसलों में घुस सुरक्षा को उस जगि को रखने नहीं। स्वार्थ के इस निचाट अंधेरे में पशुं की गुरुत्व का प्रतिवाद सचमुच बड़ा मानीखेज है। आदमी जानवर से भी गया बीता है, क्योंकि उसका घर है। केवल साइनाथ सिंह की यह कविता यहाँ बड़ी मौजूँ है –

“बिजली चमकी, पानी गिरने का डर है
वे क्यों भागे जाते हैं जिनके पर हैं।”

असल में भागते वही है, जिनके पर हैं। यह पर व्यक्ति में डर एवं असुरक्षा का भाव पैदा करता है और अंद्भुत साहस खो बैठता है। उससे प्रतिरोध की क्षमता जाती रहती है और कुन्जाओं का शिकार होता वह निपट पशु होता जाता है - नितांत अपने में सीमित। विभाजन की त्रासदी पर ही अधारित अंग्रेज की कहानी शरणार्थ का वह वाक्य यहाँ प्रायोगिक है - “भलाई की साहसीत्व ही बड़ी बुराई है। घने बादल से रात नहीं होती। सूरज के निस्तेज हो जाने से होती है।”

भारतीय इतिहास ने आंदोलनों के कई दौर देखे हैं। उस जान - उभार में यह घर जला डालने का हीसला भी जोर मारता रहा है। पर अभी तो...

Volume 3, Issue 6, November-December-2020 | www.shisrrj.com
संदर्भ सूची:

i मोहन राकेश, मलबे का मालिक, नये बादल (कहानी संग्रह), भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1957, पृ. 45
ii मोहन राकेश, वही, पृ. 54
iii वही, पृ. 46
iv मोहन राकेश, वही, पृ. 54
v मोहन राकेश, वही, पृ. 55
vi वही, पृ. 57
vii केदारनाथ सिंह, शहर में रात, प्रतिनिधि कवितायें, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2013
viii अज्ञेय, शरणदाता